वृन्दावनलाल वर्मा का व्यक्तित्व

डॉ0 अणिमा अनुरागिनी*

डॉ0 वृन्दावनलाल वर्मा का जन्म पौष शुक्ल अष्टमी संवत 1945 वि0 के दिन मऊरानीपुर में हुआ था। पिता का नाम श्री अयोध्या प्रसाद था और माता का सबरानी।

वृन्दावनलाल वर्मा बचपन से ही काफी सीधे और सरल स्वभाव के थे। इसकी झलक उनके बचपन के कई किस्सों में मिलती है। जिसका उल्लेख उन्होंने अपने कई लेखों में किया है।

एक पत्रिका में उन्होंने अपनी आत्मभिव्यक्ति लिखते हुए एक किस्सा इस प्रकार साझा किया है– ''पाँच वर्ष की आयु थी, झाँसी की उन्नाव फाटक वाली सड़क पर एक बछिया के पीछे नंगा दौड़ रहा था कि मकान के चबूतरे पर से एक आवाज आई– ''ओरे वृन्दावन! चल इधर!'' मैंने पलटकर देखा तो सफेद कुर्ता धोती पहने, सफेद टोपी लगाये, चेहरे पर चेचक का दाग, भव्य आकृति वाले एक सज्जन चबूतरे पर खड़े बुला रहे हैं। मैं सहम कर ठिठक गया।

वे मुस्कुरा कर बोले, 'इधर आरे, हम तुझे पढ़ावेंगे!' पढ़ावेंगे! अर्थात् बछिया के पीछे नहीं दौड़ने देंगे। माँ कहती थी–मैं पढ़ाऊँगी लिखाऊँगी। तो क्या अब ये पढ़ायेंगे? पास पहुँचा तो हाथ में एक बेंत देखा! क्या ये मारपीट भी करेंगे? भैया रे! ऐसे पढ़ने से तो बछिया के पीछे दौड़ना ही भला और निकट पहुँचा तो, धीरे–धीरे उनकी मुस्कान विकसित हो गई। उन्होंने मेरे सिर पर हाथ फेरा। नहाकर अँगोछा पहनने के लिए कहा और बतलाया कि उसके उपरांत विद्यारम्भ होगा। अच्छा, तो ये बेंत मेरे मारने के लिए नहीं लाये हैं।'' ऐसी कई कहानियाँ उन्होंने कई प्रकार से लिखी हैं। इन सारी कहानियों में जो बात हमेशा ही प्रदर्शित हुई है, वे है–वृन्दावनलाल वर्माजी का उनकी माता जी जिनको वो प्यार से 'मताई' कहते थे, उनके लिए प्यार और अपने सपनों के लिए लगन। ता उम्र उनकी यह भावना अडिग रहीं। एक लेख में वृन्दावनलाल वर्माजी ने लिखा– ''मैं जब चार साल का था, तब एक सपना देखा, सपने में देखा कि मऊरानीपुर से झाँसी स्टेशन पर आये तो माँ न जाने कहाँ। डिब्बे से सामान उतारा गया। सामान में एक बोरी भी निकली। उसे खोला तो उसमें माँ की लाश के टुकड़े भरे हुये थे। मैं चीख पड़ा और बेतरह सिसक–सिसक कर रोया। माँ ने तुरंत जगाकर लिपटा लिया। मैंने जब अच्छी तरह से देख लिया कि माँ जीवित है और मुझे दुलार पुचकार रही हैं, तब कुछ धैर्य बँधा।

उन्होंने पूछा, ''क्यों रोता था?'' मैंने सपने की बात सुनाई, वे हँस पड़ी। बोली–देखो मैं जीवित हूँ और बहुत दिनों जिऊँगी। तुमको बड़ा करूंगी, पढ़ाऊँगी, लिखाऊँगी'' मैंने उनसे तुरंत कहा,– ''माँ मैं कभी तुम्हारी चोरी न करूँगा। तुम्हारे पैसे चुराये थे इसलिए तुम्हारा वैसा बुरा हाल देखा।'' उन्होंने विश्वास दिलाया की उनको पैसे मिल गये, परन्तु मैंने अपनी बात ढीली नहीं की।''

वृन्दावनलाल वर्माजी के परदादा दीवान आनन्दराव 1858 ई0 में महारानी लक्ष्मीबाई के देहान्त के उपरान्त स्वतंत्रता संग्राम में लड़ते–लड़ते मारे गये थे। उन्होंने अपनी परदादी और दादी से लक्ष्मीबाई के जीवन से संबंध रखने वाली अनेक कहानियाँ सुनी थी। जिनसे उनके मन पर अमिट प्रभाव पड़ा। वर्माजी के माता–पिता वैष्णव थे। तुलसीदासजी की रामायण और सबल सिंह चौहान की महाभारत का उनके घर में नियमित पाठ होता था उसका भी उनके ऊपर काफी प्रभाव पड़ा।

वृन्दावनलाल वर्माजी के पिताजी सरकारी नौकरी में थें जब उनके पिताजी का तबादला गरौठा तहसील में हो गया, तब उन्हें अपने चाचा श्री बिहारीलाल के पास ललितपुर पढ़ने भेज दिया गया। तब वे ग्यारह वर्ष के थे और तब ही उन्होंने बा0 देवकीनन्दन खत्री की उपन्यास 'चन्द्रकान्ता' पढ़ी। उसके बाद उन्होंने 'अय्यार' बनने की ठानी और काँच पीसकर बटुये में रख लिया। जब उनके चाचाजी ने उनको ये करते देखा तो समझाया कि किसी को खिला मत देना यह जहर है और वर्माजी अय्यार बनते–बनते बच गये।

उन्हीं दिनों उन्होंने मार्सडन का अंग्रेजी उपन्यास 'भारत का इतिहास' पढ़ा, यह उपन्यास उनके पाठ्यक्रम का एक हिस्सा था। उसमें लिखा था कि भारत गर्म मुल्क है। यहाँ के निवासी कमजोर हैं। इसी कारण ठण्डे देश वाले आ–आकर भारत वालों को हराते रहे। अब अंग्रेज आ गये हैं। ये गर्मी के दिनों में ऊँचे पहाड़ों पर चले जाते है और बूढ़े हो जाने पर इंग्लैण्ड लौट जाते हैं। उनकी जगह जवान अंग्रेज आ जाते हैं। सदा रहेंगे यहाँ, भारत को आगे कभी कोई नहीं जीत सकेगा। उनको यह सब पढ़कर बहुत क्षोभ हुआ। उन्होंने पुस्तक के इस पृष्ठ की दुर्गति की और फाड़ डाला। उनके चाचा को मालूम हो गया और उन्होंने वर्माजी की पिटाई की। जब उन्हें कारण विदित हुआ तब वो पछताए, तब उन्होंने वर्माजी से कहा की अंग्रेजों ने झूठ लिखा, अपना रौब जमाए रखने के लिए।

***व्याख्याता, हिन्दी विभाग, महाराजा हरेन्द्र किशोर कॉलेज मोतिहारी**

तब उनके मुँह से निकल पड़ा कि ''असली बात मैं लिखूँगा'' यह निश्यच उनके उपचेतन मन में घर कर दिया, और उनके पूरे जीवन में उनको प्रेरणा देता रहा। ललितपुर से आँठवी कक्षा पास करके वो झाँसी आ गये और वहाँ नवीं कक्षा में भर्ती हो गए। नवीं कक्षा में ही उन्होंने तीन छोटे–छोटे नाटक लिखें। जो कभी छपे नहीं पर पुरस्कार स्वरूप उनके पास प्रयाग के इण्डियन प्रेस से 50 रूपये का मनीआर्डर आया।

सन् 1907 में उन्होंने हाईस्कूल परीक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की और उन्हें वजीफा भी मिला। परंतु वे आगे पढ़ने नहीं गए और क्रान्तिकारियों में शामिल हो गये। उन्होंने कई हथियार भी इकट्ठे किये और कई बार जेल जाते–जाते भी बचे। उन्हीं दिनों उन्होंने एक नाटक 'सेनापति ऊदल' भी लिखा जिसमें उन्होंने ये विचार व्यक्त किया कि देशद्रोही को जैसे बने तैसे समाप्त कर देने में कोई पाप नहीं है। दो वर्ष उन्होंने इसी प्रकार के पहलवानी और क्रान्ति में ही बिताया।

सन् 1908 में उन्होंने महात्मा बुद्ध का जीवन चरित्र लिखा जिसे आगरा के कुंवर हनुमन्त सिंह रघुवंशी ने उसी वर्ष प्रकाशित कर दिया। उसी के भूमिका में उन्होंने 'हिन्दी' को भारत की भावी राष्ट्रभाषा कहा, क्योंकि उन दिनों उस प्रकार की चर्चा चल रही थी। उसी वर्ष उन्होंने शेक्सपियर के नाटक टैम्पेस्ट का भी हिन्दी अनुवाद किया था, हांलाकि, वो अनुवाद कभी प्रकाशित नहीं हुआ।

सन् 1908 में उन्होंने वॉल्टर स्कॉट के कई उपन्यास पढ़े जिनसे उन्हें बुन्देलखण्ड के प्राकृतिक दुश्यों, लोकपरम्पराओं, जनगाथाओं पर लिखने की प्रेरणा मिली।

वृन्दावनलाल वर्माजी के घर में उन दिनों काफी गरीबी थी। उन्होंने झाँसी की जजी में उम्मीदवारी की। इक्कीस दिनों के लिए उन्हें सब रजिस्ट्रार की नौकरी मिली जिसका मासिक वेतन बारह रूपये था। वहाँ रिश्वतखोरी थी जो उन्हें कभी नहीं अच्छी लगी और सिर पर बचपन का सच लिखने वाला सपना भी सवार रहता था। वह नौकरी छोड़ कर वन विभाग के दतर में क्लर्क की नौकरी ले ली, जहाँ मासिक वेतन पच्चीस रूपये था, पर उनके बचपन का सपना हमेशा उनके सामने आता रहा, उन्होंने नौकरी छोड़ दी और आगे पढ़ने का निश्चय किया। जिससे उनके पिताजी काफी रूष्ट हुये, पर माँ ने प्रोत्साहित किया और उनसे बोली– 'जाओ पढ़ो और बढ़ो, मैं अपने गहने बेच–बेच कर पढ़ाऊंगी।'

सन् 1909 की जुलाई में उन्होंने ग्वालियर के विक्टोरिया कॉलेज में दाखिला ले लिया। फीस माफ थी वहाँ, और जीवन सादा था। वहाँ उनके कमरे में मथुरा के श्री लक्ष्मण प्रसाद गुप्त भी रहते थे। जिनसे उनकी मित्रता आजीवन चली।

डॉ0 वृन्दावनलाल वर्माजी के जीवन में उनके धार्मिक विचारधाराओं में भी काफी बदलाव आया। पहले वो घोर सनातनी थे। फिर वे एक आर्य समाजी बन गये। उसके बाद नास्तिक और फिर आस्तिक, वे अपने आप को एक युक्तियुक्त आस्तिक कहा करते थे।

इण्टर और बी.ए. उन्होंने तीसरी श्रेणी से पास किया। कॉलेज में उनके अध्यापक प्रो0 आर0 के0 कुलकर्णी जी ने उन्हें निष्काम कर्म करने के लिए प्रेरित किया। इस पर वर्मा जी उनके कुछ साथियों ने एक संगठन बनाकर लोगों की सहायता करना शुरू किया। उनकी सेवा समिति ने सन् 1918 के इन्लूयेन्जा में भी लोगों की खूब सेवा की।

वर्माजी ने मनोविज्ञान से प्रेरित होकर नृवंश विज्ञान और समाजशास्त्र का भी अध्ययन किया।

बी.ए. के बाद वर्मा जी कानून पढ़ने के लिए आगरा चले गये। सन् 1914 में उनकी माता के देहान्त का उनके ऊपर बहुत प्रभाव पड़ा और वो काफी लम्बे समय तक बीमार रहें।

इसके बाद उन्होंने मुराद, ह्रदय की हिलोर और अन्य कई कहानियाँ, नाटक और निबंध लिखें। इन्हीं दिनों वे कई रचनाकारों के संपर्क में आये जिनमें श्री मैथलीशरण गुप्त, श्री गणेश शंकर विद्यार्थी और श्री माखनलाल चतुर्वेदी थे। सन् 1918 के लगभग राय कृष्णदास जी से भी संपर्क में आए।

उसके बाद वर्माजी ने कई उपन्यास लिखे जिनमें गढ़कुण्डार, लगन, संगम, प्रत्यागत, प्रेम की भेंट, कुण्डली चक्र और विराटा की पदमिनी शामिल है। सन् 1936 की जनवरी में वे जिलाबोर्ड के अध्यक्ष चुने गये। करीब 12 वर्ष वे उसी पद पर रहें। सन् 1946 में उन्होंने 'स्वाधीन प्रेस' की स्थापना की जिसमें उन्होंने लक्ष्मीबाई उपन्यास प्रकाशित किया। वर्माजी को शिकार का भी बड़ा शौक था अपने शिकारी जीवन में उन्होंने 'दबे पाँव' की रचना की थी।

वर्माजी आजीवन ही अपने बचपन के सपने को पूरा करने का अथक प्रयास करते रहें और उन्हें सफलता भी खूब मिली। अपने आत्माभियक्ति डॉ. वृन्दावनलाल वर्माजी कहते हैं– अब परमात्मा से प्रार्थना है कि जीवन पर्यन्त देश और समाज की सेवा साहित्य द्वारा करता रहूँ और क्यों छिपाऊँ थोड़ी सी वकालत भी करता रहूँ जिससे किसी भी दल का हिस्सा होने से बचा रहूँ।

संदर्भ ग्रेथों की सूचीः–

1. वृन्दावनलाल वर्माजी समग्र, सात खण्ड, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, 1994

2. कला एवं साहित्यः प्रवित्ति एवं परंपरा, प्रो0 विश्वनाथ प्रसाद, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, प्रथम संस्करण, 1973
3. हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास (एकादश भाग) सं0, डॉ0 सावित्री सिन्हा, दशरथ ओझा, लक्ष्मी नारायण लाल, नागरी प्रचारिणी सभा, प्रथम संस्करण, 2029वीं
4. आलोचना (विशेषांक) पूर्णाक–39, जुलाई–सितम्बर, 1967
5. हिन्दी अनुशीलन (वृन्दावनलाल वर्मा विशेषांक)

****